नियमसार, गाथा १२०। १२० आयी न?

मुमुक्षु : १९० कलश बाकी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कलश बाकी है? मनवाला होकर आया है न? मनवाला होकर भाव हो गया है। आ गया है। उसके ऊपर से मनवाला भाव, ऐसा कहा था न? वह आ गया है।

शुभ अशुभ-रचना वचन की, परित्याग कर रागादि का।
उसको नियम से है नियम जो ध्यान करता आत्म का॥१२०॥

यह नियमसागर के नियम। आहाहा! नियमसागर आया, लो! नियमसार। नियमसार में नियम किसे कहना? कहते हैं। नियम। आहाहा!

यह, शुद्धनिश्चयनियम के स्वरूप का कथन है। शुद्धनिश्चयनियम। सत्य परमार्थ नियम किसे कहना? इसने नियम लिया और नियम किया, वह नियम कहना किसे? कहते हैं। आहाहा! **जो परमतत्त्व ज्ञानी...** आहाहा! मुनि से शुरु किया है। **जो परमतत्त्व ज्ञानी...** अकेला तत्त्व ज्ञानी, ऐसा नहीं, परमतत्त्व जो अन्दर अखण्ड आनन्द और अखण्ड ज्ञान और शान्ति आदि से भरपूर अरूपी स्वभाव परन्तु वह बड़ा सागर है। विकल्प से हाथ आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा जो यह चैतन्य सागर, चैतन्य रत्नाकर, उस शुद्धनिश्चयनियम के स्वरूप का इसमें कथन है। है न पहला?

परमतत्त्व ज्ञानी... परमतत्त्व यह आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, शान्तस्वरूप, वीतरागस्वरूप का जिसे अनुभव में ज्ञान हुआ है। अनुभव में ज्ञान हुआ, धारणा में नहीं।

आहाहा! उसे नियम कहा जाता है। इसने नियम लिया है, ऐसा कहते हैं न? कि इसने नियम किया। वह नियम किया कहना किसे? कहते हैं। **जो परमतत्त्व ज्ञानी...** आत्मा जो परमतत्त्व है, उसका जिसे अनुभव है, (वह परमतत्त्व ज्ञानी है)। आहाहा! **महातपोधन...** यह विशेषण प्रयोग किया। **महातपोधन...** जिसे आनन्द का रस झरता है - अतीन्द्रिय आनन्द का रस झरता है। आहाहा! स्वरूप सन्मुख होने पर अतीन्द्रिय आनन्द झरता है, ऐसा महातपोधन। यह तप अर्थात् यह आनन्द। जिसे अन्दर आनन्द झरता है, ऐसा महातपोधन। आहाहा!

सदा संचित सूक्ष्मकर्मों को... सदा ही जो कर्म का संचय किया है, उसे **मूल से उखाड़ देने में समर्थ...** मूल से उखाड़ देने में समर्थ। आहाहा! **निश्चयप्रायश्चित्त में परायण रहता हुआ...** इसे नियम कहते हैं। निश्चयप्रायश्चित्त अर्थात् आनन्द के स्वरूप में प्रायः अर्थात् ज्ञान और चित्त परायण। स्थित है न? स्थित अर्थात् ज्ञान है। प्रायः बहुलता से ज्ञान अर्थात् अकेला ज्ञान ही आत्मा, बस! आनन्द और ज्ञान से भरपूर भगवान... आहाहा! यह बात जँचना कठिन पड़ती है। अनादि का अभ्यास नहीं। अब शरीर प्रमाण कद छोटा और रत्न का पार नहीं होता। पार नहीं होता। चैतन्य में रत्न भरे हैं, उनका पार नहीं होता। आहाहा!

यह **संचित सूक्ष्मकर्मों को मूल से उखाड़ देने में समर्थ निश्चयप्रायश्चित्त में परायण...** यह निश्चयस्वरूप की आनन्द की दशा की रमणता में परायण। आहाहा! वह **निश्चयप्रायश्चित्त में परायण रहता हुआ...** आहाहा! अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु (मौजूद है), उसमें नित्य परायण रहता हुआ। आहाहा! उसमें परायण रहता हुआ। इसका नाम नियम। आहाहा! नियम लिया, ऐसा कहते हैं न? हमने नियम लिया है। परन्तु किसका नियम? कौन सा नियम? आहाहा! अन्तर की वस्तु अनुभव में आकर... यह वेदन न आवे, तबतक इसे नियम है कहाँ? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मन-वचन-काया को नियमित (संयमित) किये होने से... और **निश्चयप्रायश्चित्त में परायण रहता हुआ मन-वचन-काया को नियमित...** अर्थात् रोका है। आहाहा! मन-वचन-काया की ओर से झुकाव छूट गया है। आहाहा! **मन-वचन-काया को नियमित (संयमित) किये होने से...** आहाहा! **भवरूपी बेल के मूल-कन्दात्मक...** भवरूपी

बेल-बेलड़ी। बेलड़ी होती है न? ये बेल। इस **भवरूपी बेल के मूल-कन्दात्मक...** इसका मूल कन्दस्वरूप, मूलस्वरूप **भवरूपी बेल के मूल-कन्दात्मक शुभाशुभस्वरूप...** आहाहा! शुभ और अशुभस्वरूप, यह भवरूपी बेल के मूल-कन्दात्मक है। मूल कन्द है। आहाहा! ऐसी भाषा कभी सुनी नहीं थी। आहाहा! गजब बात है! अकेला अमृत का बेल, अमृत की बेलड़ी की बातें हैं। आहाहा!

कहते हैं कि मूल कन्दस्वरूप। मूल... मूल। शुभाशुभस्वरूप। संसार का मूल-बीज चौरासी के अवतार में भटकने का यह शुभाशुभभाव है। आहाहा! शुभभाव शुभ। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यह तो संसार का मूल है। आहाहा! इसमें से संसार फलता है। यह संसार का मूल कन्द है। इसमें से संसार फलता है। आहाहा! शब्द-शब्द में अन्तर है। वर्तमान चलती बात लोगों को कठिन लगती है। वस्तु है न, बापू! अन्दर वस्तु है न? सत्ता है न? और सत्ता है तो उसका स्वभाव है न? और स्वभाव है, उसके स्वभाव की हद क्या होगी? संख्या क्या होगी और हद क्या होगी? अनन्त स्वभाव और बेहद जिसका स्वभाव... आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, उसके आश्रय में रहकर मन-वचन-काया को संयमित कर डाला।

मूल-कन्दात्मक शुभाशुभस्वरूप प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त वचनरचना का निवारण करता है,... आहाहा! प्रशस्त वचन और अप्रशस्त वचन, दोनों का निवारण करता है। प्रशस्त वचन में भी राग है। आहाहा! **केवल उस वचनरचना का ही तिरस्कार नहीं करता... प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त वचनरचना का निवारण करता है, केवल उस वचनरचना का ही तिरस्कार नहीं करता...** तिरस्कार शब्द प्रयोग किया है। आहाहा! शुभ और अशुभभाव, अरे! अनादि-अनन्त संसार में जीव का स्वरूप, वह जंगल और अरण्य में भटके। आहाहा! अपने घर में आवे नहीं। अपनी जाति में रत्न भरे हैं, उसमें आवे नहीं और जहाँ कुछ धूल भी नहीं है... आहाहा! स्त्री, कुटुम्ब, परिवार आदि... आहाहा! वह कोई चीज़ नहीं इसमें, उसमें धूल भी नहीं, वहाँ उलझ गया है। आहाहा!

आनन्द का नाथ, जिसकी सत्ता में अनन्त शक्तियाँ हैं और जिसकी शक्ति का भी अनन्त-अनन्त सामर्थ्य है—ऐसा भगवान आत्मा, वह केवल वचनरचना को छोड़कर नहीं रहता, कहते हैं। यहाँ वचन (रचना) छोड़कर... तिरस्कार कहा है। आहाहा!

वचनरचना का तिरस्कार। आहाहा! **किन्तु समस्त मोहरागद्वेषादि परभावों का निवारण करता है...** अकेले वचन छोड़कर बैठा नहीं। अन्दर में उतरा है। आहाहा! **समस्त मोहरागद्वेषादि...** समस्त मोहरागद्वेषादि मिथ्याभ्रान्ति के भी बहुत प्रकार हैं, उन सबको छोड़कर... आहाहा! और शुभाशुभभाव, राग और द्वेषादि परभावों का निवारण करता है। आहाहा!

और अनवरतरूप से (-निरन्तर) अखण्ड, अद्वैत,... आहाहा! निश्चय प्रायश्चित्त और निश्चयनियम, सत्य नियम, सत्य स्वरूप भगवान आत्मा के आश्रय से सत्य नियम प्रगट होता है। आहाहा! समझ में आया इसमें? देवीलालजी! बहुत सूक्ष्म बातें हैं। आहाहा! यह शरीर, वाणी, मन तो धूल है और बाहर के साधन स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, मकान। इसमें कहीं नाम आयेगा। तीन नाम आये हैं। १२१ गाथा में आयेंगे। काया को छोड़कर नहीं परन्तु **क्षेत्र, घर, कनक, रमणी आदि।** १२१ गाथा। आहाहा! काया का लक्ष्य तो छोड़ दे परन्तु परक्षेत्र, परघर, पर सोना, और स्त्री इत्यादि। लड़के-लड़की इत्यादि। आहाहा! गजब काम।

यदि आत्मा की दृष्टि करनी हो, नियम करना हो कि मुझे तो मुझमें रहना है, दूसरे में कहीं नहीं, ऐसा नियम करना हो... आहाहा! इस वचनरचना का तो तिरस्कार कर, परन्तु मोह, राग-द्वेष के परभाव का निवारण कर। आहाहा! गाथा ऐसी है। समयसार से भी कितनी ही बातें इसमें उत्कृष्ट है। ऐसी बात है। शीतलप्रसादजी ने नियमसार की प्रस्तावना में लिखा है, भाई! कि यह नियमसार है, वह समयसार से भी कितनी ही बातों में चढ़ जाता है। आहाहा! अब इसका तो श्रवण भी नहीं और वांचन भी नहीं। बाहर के साधारण शास्त्र पढ़े और... आहाहा! मूल बात रह जाए। आहाहा!

भगवान आत्मा कैसा है? मोह-राग-द्वेष आदि परभावों का निवारण करनेवाला है। वह तो टालनेवाला है। आहाहा! करनेवाला नहीं। उसका स्वरूप नहीं। वचन बोलना या मोह-राग-द्वेष करना वह उसका स्वरूप नहीं। आहाहा! और **(-निरन्तर)...** आहाहा! **अनवरतरूप से...** अर्थात् **(-निरन्तर) अखण्ड,...** भगवान आत्मा अन्दर अखण्ड है। जिसमें भेद और खण्ड नहीं। पर्याय का भेद भी उस वस्तु में नहीं। आहाहा! करता है अनुभव पर्याय में, निर्णय और अनुभव पर्याय में (होता है) परन्तु वह पर्याय त्रिकाली द्रव्य

में नहीं है। आहाहा! इससे अखण्ड कहा। आहाहा! अखण्ड वस्तु अन्दर भगवान परमात्मा। परमात्मा। आत्मा को परमात्मा कहना, यह लोगों को कठिन पड़ता है। आत्मा परमात्मा ही है। यदि परमात्मा न हो तो परमात्मा पर्याय में होगा कहाँ से? केवली अरिहन्त हुए कहाँ से? यह आत्मा अन्दर परमात्मस्वरूप ही है। सवेरे नहीं कहा था? 'घट घट अन्तर जिन बसै, घट घट अन्तर जैन, मत मदिरा के पान सौं...' अपनी धारणा के मत की मदिरा के कारण 'मतवाला समझे न।' मतवाला को अपने मत का अभिमान है... आहाहा! उसके कारण वह समझता नहीं है। आहाहा!

प्रभु अन्दर अखण्ड है। **अद्वैत...** जिसमें दोपना नहीं। आहाहा! द्रव्य और गुण अथवा द्रव्य और पर्याय ऐसे दो भेद भी जिसमें नहीं है। आहाहा! अद्वैत अखण्ड प्रभु अद्वैत। पहले अखण्ड कहा, वह खण्ड-खण्ड पर्याय नहीं। पश्चात् अद्वैत कहा, वह वस्तु एकरूप है। त्रिकाल ज्ञायकभाव से भरपूर तीनों काल अद्वैत अर्थात् एकरूप है। आहाहा! ऐसी वस्तु है। **सुन्दर-आनन्दस्पन्दी...** अखण्ड है। निरन्तर अखण्ड और अद्वैत और सुन्दर आनन्द स्पन्दी। ऐसा तीन जगह आता है। सुन्दर-आनन्दस्पन्दी—सुन्दर आनन्द झरता, ऐसा आता है। २१२, २८१ पृष्ठ पर। तीन जगह आता है।

क्या कहते हैं? धर्मी जीव नियम करता है, नियम। तो उस नियम में आत्मा का अखण्ड अद्वैत आनन्द सुन्दर, सुन्दर आनन्द। यह अनादि से धूल का आनन्द माना है... आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषय सुख के झुकाव के राग में जो सुख मानता है, वह तो जहर का प्याला है। आहाहा! भगवान अमृत का सागर आनन्द स्पन्दी है। सुन्दर आनन्द झरता, जिसमें से सुन्दर आनन्द झरता है। आहाहा! क्या कहा? वह सुन्दर आनन्द का वृक्ष है। उसमें से उसकी ओर देखने पर उसमें से सुन्दर आनन्द झरता है। आहाहा! वह सुन्दर आनन्द का वृक्ष है। आहाहा! उसके ऊपर झुकने से, उसके सामने देखने पर पर्याय में निरन्तर अखण्ड अद्वैत सुन्दर आनन्द झरता है। आहाहा! अभी मूल बात व्यवहार में चढ़ गयी है। सब व्यवहार दिगम्बर मुनि में ऐसा क्रिया-व्यवहार। मूल चीज़ नहीं होती। सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है? आहाहा! और उस सम्यग्दर्शन का विषय, ध्येय क्या चीज़ है? आहाहा!

यह तो अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द, अतीन्द्रिय वीतरागस्वभाव से भरपूर, जिसे

अन्तर्मुख होने पर मन, वचन और काया की ममता छोड़कर... आहाहा! दूसरी चीज़ की ओर से तो छूटा परन्तु नजदीक में नजदीक जो मन, वचन और काया... आहाहा! उनसे भी निवृत्त करके। आहाहा! है न? वचनरचना का तिरस्कार करके। **समस्त वचनरचना का निवारण करता है।** और **(-निरन्तर) अखण्ड, अद्वैत,...** एकरूप। सुन्दर आनन्दस्पन्दी। सुन्दर आनन्द झरता है। अतीन्द्रिय आनन्द। सुन्दर अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द। आहाहा! यह आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है। इसकी एकाग्रता करने से अतीन्द्रिय आनन्द झरे अर्थात् पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द आता है। द्रव्य-गुण में जो पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द है, यह बाहर का सब निवारण करके इस ओर जहाँ ढलता है, वहाँ पर्याय में अखण्ड और एक और अद्वितीय आनन्द झरता है। आहाहा! ऐसा धर्म।

वह कहे सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो। आहाहा! वह कहे कि भक्ति करो, शत्रुंजय, गिरनार, सम्मेदशिखर की यात्रा करो, विशाल रथ निकालो, संघ निकालो संघ, पाँच लाख खर्च करके। आहाहा! इसने उस धर्मपीठ में पाँच लाख दिये। लालचन्द हीराचन्द है न? लालचन्द हीराचन्द मुम्बई है न? दिगम्बर नहीं? वह मूँछवाला। मूँछ ऐसी की ऐसी नहीं रखते। ऐसा करके ऐसे चढ़ाते हैं। लालचन्द हीराचन्द है। ऐसी मूँछ है, उसे ऐसी ऊँची करके ऐसा करे। पाँच लाख रुपये अभी तीर्थक्षेत्र में दिये हैं। करोड़पति है। आहाहा! उसमें ऐसा माने कि अपने को धर्म होगा।

मुमुक्षु : इस बात को मनवानेवाले भी मिलते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वत्र मानते हैं। साधु मनावे, माने। प्रभु! क्या करे? साधु को इस श्रद्धा की दृष्टि की खबर नहीं। नग्नपना और क्रियाकाण्ड में पड़े हैं। वास्तविक वस्तु का लक्ष्य तो नहीं परन्तु उसकी प्ररूपणा चाहे (जो करते हैं)। मार्ग तो यह है। आहाहा! जन्म-मरण के अन्त की बातें तो यह है। आहाहा! उसमें किसी की सिफारिश या किसी की मदद और किसी की उपस्थिति की वहाँ आवश्यकता नहीं है। आहाहा!

ऐसा जो भगवान आत्मा अन्दर, देह की चमड़ी से भिन्न अन्दर भगवान विराजता है। आहाहा! यह तो चमड़ी का थोथा, चमड़ी का खोल है। आहाहा! इस खोल में अन्दर दूसरा भगवान... यह पहला और वह दूसरा। अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर (विराजता है)। इसलिए मुनि ने यहाँ ऐसा कहा कि इसके सामने जिसने देखा, परसन्मुख से जो विमुख

हुआ उसे अतीन्द्रिय आनन्द झरता है अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव होता है। आहाहा! भाषा तो सादी परन्तु अब भाव तो भई यह है। आहाहा! अरे! चौरासी के अवतार कर-करके, बापू! अभी यहाँ मनुष्य हुआ परन्तु चींटी, कौआ, कुत्ता, नरक के नारकी के ऐसे अनन्त अवतार किये हैं। आहाहा! कसाईखाना (चलानेवाला) कसाई अनन्त बार हुआ। करोड़ों जानवरों को काट डाले। आहाहा! परन्तु इसने आत्मा अपनी चीज़ क्या है, उस पर ध्यान नहीं दिया। आहाहा! बाहर के काम में सन्तुष्ट हो गया। आहाहा!

मुनिराज ने यह शब्द प्रयोग किया है। **(सुन्दर आनन्द-झरते), अनुपम,...** आहाहा! जिसे कोई उपमा नहीं। यह भगवान, भगवान जैसा, बस! इसे किसी की उपमा नहीं। आहाहा! **अनुपम, निरंजन...** जिसमें अंजन अर्थात् कोई मैल नहीं। आहाहा! **निजकारणपरमात्मतत्त्व की...** आहाहा! निजकारणपरमात्मतत्त्व त्रिकाल की... आहाहा! **सदा शुद्धोपयोग के बल से...** आहाहा! अब अभी कहते हैं, शुद्धोपयोग होता नहीं। अरे! प्रभु! सर्वथा नहीं होता, ऐसा नहीं होता, प्रभु! अभी तो शुभयोग होता है। आहाहा! श्रुतसागर (कहते हैं), अभी तो शुभयोग ही होता है।

मुमुक्षु : वह मुनि कहाँ रहे?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि कहाँ है? मुनि समकिती भी कहाँ है? मिथ्यादृष्टि है। कठिन बात है, हों! बापू! लोगों को कठिन लगे परन्तु वस्तु में तो इतना अन्तर है, बापू! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं **निजकारणपरमात्मतत्त्व की सदा शुद्धोपयोग के बल से...** देखा! शुभ-अशुभ परिणाम नहीं। शुभ-अशुभ परिणाम से रहित। आहाहा! जिसे अभी बात सुहाती नहीं, उसे कहाँ जाना अन्दर से? आहाहा! चौरासी लाख के अवतार में भटक मरा है। आहाहा! एक बार देखा था। सर्प निकला, सर्प और एक वह निकला। क्या कहलाताा है? गिरगिट। मैं जंगल जाता था। गिरगिट को मुँह में लेकर टुकड़े कर डाले। जीवित टुकड़े। फिर खाया। आहाहा! यह अवतार। यह सर्प का अवतार। आहाहा! गिरगिट के अवतार। ऐसे अनन्त अवतार किये, भाई! यह वर्तमान एक अवतार देखकर दूसरे अवतार हुए थे, उन्हें भूल गया। आहाहा! किस क्षेत्र में ढाईद्वीप और ढाईद्वीप से बाहर। आहाहा! अरे! लोक के अन्त में निगोदरूप से भी अनन्त बार गया है। लोक के अन्त में। सिद्धभगवान है, वहाँ निगोद है। जहाँ सिद्धभगवान है, वहाँ निगोद है। वहाँ भी

अनन्त बार जा आया है। आहाहा! सिद्धभगवान के पेट में निगोदरूप से रहा आया था। आहाहा! तथापि उनके आत्मा को स्पर्श नहीं किया। गजब बातें हैं। आहाहा!

भगवान अनन्त आनन्द को अनुभव करते हैं और अन्दर पेट में रहे हुए निगोद अनन्त दुःख को अनुभव करते हैं। क्षेत्र एक, भाव भिन्न है। आहाहा! एकक्षेत्रावगाह होने पर भी; क्षेत्र एक अर्थात् क्या? वस्तु में क्या अन्तर? वास्तव में तो उसका क्षेत्र भी अलग है। आहाहा! सिद्ध भगवान रहते हैं, वहाँ अन्त में-अन्त में वहाँ निगोद है। आहाहा! महा अनन्त दुःख और एक शरीर में अनन्त आत्मा और अक्षर के अनन्तवें भाग विकास। दूसरा सब दुःखरूप भाव। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **शुद्धोपयोग के बल से...** यह कर, प्रभु! करनेयोग्य यह है। आहाहा! **शुद्धोपयोग के बल से सम्भावना (सम्यक् भावना) करता है,...** शुद्धोपयोग के बल से सम्यक् भावना करता है, ऐसा कहते हैं। है न? जयसेनाचार्य की टीका में आता है कि सच्चा श्रावक पाँचवें गुणस्थान में होता है, वह सामायिक करता है, तब उसे शुद्धोपयोग भी आ जाता है। शुद्धोपयोग की भावना आती है, अर्थात् शुद्धोपयोग आता है। वह भावना न होवे तो यह दूसरा करे। ऐसा कि श्रावक को शुद्धोपयोग होगा? शुद्धोपयोग का निषेध किया है, वह तो मुनि को शुद्धोपयोग होता है, इसे यह उपयोग नहीं। श्रावक को शुद्धोपयोग का निषेध किया है, वह तो मुनि को ही शुद्धोपयोग है, ऐसा उपयोग इसके लिये नहीं है; इसलिए उन्होंने इन्कार किया है। उनके गृहस्थ (दशा के) प्रमाण में शुद्धात्मा के बल से (शुद्धोपयोग है)। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

शुद्धोपयोग के बल से... शुभाशुभ परिणाम तो निवारण किये। आहाहा! सत्य वचन और असत्य वचन तो निवारण किये, सत्य और असत्य मन को निवारण किया। काया के सत्य-असत्य निवारण किया और **शुद्धोपयोग के बल से...** आहाहा! **सम्भावना (सम्यक् भावना) करता है, उसे (उस महातपोधन को) नियम...** कहा गया है। उसे यहाँ प्रायश्चित्त कहा जाता है। यह आगे लेंगे। उसे कायोत्सर्ग भी कहने में आता है। यह आयेगा। आहाहा! यहाँ तो बोल जाए 'तत्सुत्री करणेन, प्रायश्चित्त करणेन...' कायोत्सर्ग करे। आहाहा! अरे! प्रभु! तेरे हित की बात है। इसे दुःख लगता है। हम यह सब करते हैं वह खोटा? ऐसा करके दुःख लगता है। भाई! तू करता है, वह सब राग है। राग है तो

संसार फलेगा, बापू! तब तुझे दुःख होगा। इस संसार के राग के परिणाम आयेंगे... आहाहा! वहाँ कोई सामने नहीं दिखेगा, प्रभु! वहाँ तुझे दुःख होगा। असंख्य द्वीप समुद्र, कहीं पृथ्वीरूप से, कहीं पानीरूप से, कहीं अग्निरूप से अवतरित होगा। आहाहा!

सदा शुद्धोपयोग के बल से सम्भावना (सम्यक् भावना) करता है, उसे (उस महातपोधन को)... आहाहा! देखो! यह महातपोधन। अपवास किये, यह किया और ऐसा कुछ कहा नहीं। इसने महीने के अपवास किये, इसलिए महातपोधन, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! अन्तर के आनन्द में अखण्ड, अद्वैत शुद्धोपयोग के बल से आनन्द के झरने को वेदता है, उसे कायोत्सर्ग, उसे प्रायश्चित्त, उसे नियम कहा जाता है। इसने नियम लिया। आहाहा! देखो! है? **उसे (उस महातपोधन को) नियम से...** देखो! **शुद्धनिश्चयनियम...** नियम से शुद्धनिश्चयनियम। सच्चा नियम तो उसे कहना। बाकी यह नियम लिया, अमुक करना और नहीं करना, वह तो थोथा सब व्यवहार हैं। आहाहा! सुनने को नहीं मिलता। शास्त्र में सब बात पड़ी है। सब पड़ी है। नियमसार, प्रवचनसार, समयसार, अष्टपाहुड़, पंचास्तिकाय ढ़ेर पड़े हैं। आहाहा! सुनने को मिलता नहीं, वह विचार कब करे और अन्दर में कब जाए? और सुनने को मिले तो कहे, यह तो निश्चय है... निश्चय है... निश्चय है। इस काल में अभी यह नहीं होता। अर..र..! प्रभु! इस काल में धर्म नहीं होता, ऐसा है न? आहाहा! इस काल में अधर्म होता है? ऐसा नहीं होता, प्रभु! तू है या नहीं?

उसमें तो अपने आया था न? प्रसिद्ध कारणपरमात्मा। इसके पहले आया था। पहले कहीं आया था। (११८ गाथा की टीका)। **प्रसिद्ध शुद्धकारणपरमात्मतत्त्व...** आहाहा! **प्रसिद्ध शुद्धकारणपरमात्मतत्त्व में सदा अन्तर्मुख रहकर...** आहाहा! उसमें **अन्तर्मुख रहकर जो प्रतपन, वह तप...** गजब बात है। यह महिलाएँ वर्षीतप करें और पाँच-दस हजार खर्च करे, वहाँ ओहोहो...! उसने वर्षीतप किया था न? सेठानी नहीं? अहमदाबाद। जैसंगभाई के लड़के की बहू ध्रांगध्रा की नयी... किया था तो पिचहत्तर हजार खर्च किये। यहाँ से वह निकली थी। स्पेशल (ट्रेन) पालीताणा। पिहचत्तर हजार खर्च किये थे। इसलिए मानो उसमें धर्म हो गया और कहनेवाले भी सब मनावे। हो... हा...हो... दिखे अच्छा। अब यह न दिखे, उसकी बातें। दिखे उसके शून्य लगावे और न दिखे

उसकी बात (चलती है)। आहाहा! यह शत्रुंजय की यात्रा और गिरनार की और मेरु क्या? सम्मेदशिखर, इन सबकी यात्रा शुभभाव है, संसार है। आहाहा! उसे रोककर... आहाहा!

यह कहा न यहाँ? **नियम से... (उस महातपोधन को) नियम से शुद्धनिश्चयनियम है...** उसे शुद्धनिश्चयनियम है। आहाहा! उसने शुद्धनिश्चयनियम को आदर किया है। आहाहा! शुद्धनिश्चयनियम। प्रत्याख्यान कहो, कायोत्सर्ग कहो, प्रतिक्रमण कहो, निश्चयनियम कहो। उसने किया। आहाहा! ऐसे को, मुनिराज वापस आधार देते हैं कि ऐसा जो कठिन कहलाता है, इससे मैं अकेला कहता हूँ, ऐसा नहीं है। आहाहा! **भगवान सूत्रकार का अभिप्राय है।** है? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का यह अभिप्राय है। आहाहा! पहले आ गया है। ८८ पृष्ठ पर। वह नहीं? निषेध किया। यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... वहाँ ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य का (आया है) अन्त में कहा। यह सब भगवान परमात्मा को शुद्धनिश्चय के बल से नहीं है, ऐसा भगवान सूत्रकर्ता का अभिप्राय है। आहाहा! इसलिए मुनिराज कहते हैं कि भाई! मैं कहता हूँ, इसलिए तुम्हें ऐसा... परन्तु कुन्दकुन्दाचार्य। मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो। तीसरे नम्बर में। उनका यह अभिप्राय है। आहाहा! कठिन लगे, इसलिए आगे चले नहीं, ऐसी बात है। अन्दर वांचन, श्रवण और मनन यह सब बातें विकल्प और राग।

यहाँ कहते हैं कि **नियम से शुद्धनिश्चयनियम है ऐसा...** मुनिराज कहते हैं। यह कुन्दकुन्दाचार्य को मुनिराज भगवानरूप से बुलाते हैं। मुनि स्वयं है, वे भगवानरूप से बुलाते हैं। आहाहा! **ऐसा भगवान सूत्रकार का अभिप्राय है।** इस गाथा के शब्द यह सूत्रकार भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के हैं। यह कुन्दकुन्दाचार्य की इस गाथा में यह अभिप्राय है, ऐसा कहते हैं। देखो न, पाठ है न। **सुहअसुहवयणरयणं** है न? **रायादीभाववारणं किच्चा।** आहाहा! **अप्पाणं जो झायदि तस्स दु णियमं हवे णियमा।** उसे नियम होता है **णियमा।** आहाहा! पाठ में है। गाथा। **रयणं** शुभाशुभ वचनरूपी रचना। आहाहा! और रागादिभाव **वारणं**। शब्दों को छोड़कर, राग को भी छोड़कर... आहाहा! जो कोई **अप्पाणं झायदि** यह **अप्पाणं** का अर्थ परमतपोधन किया है। यह आनन्द झरता है। आहाहा!

अपने आत्मा का जो ध्यान करता है, वचनों को छोड़कर... आहाहा! और राग को छोड़कर, निरागी भगवान अन्दर है, उसे जो सेवन करता है, उसका अनुभव करता है, उसे

निश्चय से नियम है। **ऐसा भगवान सूत्रकार का अभिप्राय है।** आहाहा! एक गाथा में तो इसमें कितना आया! और वापस आधार कुन्दकुन्दाचार्य का (दिया)। मैं अकेला टीका करता हूँ, ऐसा नहीं; मैं कहता हूँ, ऐसा नहीं। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की टीका करनेवाला मैं तो यह भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का यह अभिप्राय है। इस गाथा का अर्थ मैं करता हूँ, परन्तु इस गाथा का अर्थ यह भगवान का अभिप्राय है, कुन्दकुन्दाचार्य का अभिप्राय है। मेरे घर का अभिप्राय एक भी नहीं है। आहाहा! वापस नरमायी भी कितनी! आहाहा!

मुमुक्षु : अनन्त पंच परमेष्ठी का यह अभिप्राय।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबका यह अभिप्राय। अनन्त तीर्थंकरों का यह अभिप्राय है। यहाँ सूत्रकार भगवान का ही कहा है। यह सूत्रकार हैं न? ऐसा कहा न? आहाहा! यह सूत्रकार हैं न? सूत्र-गाथा तो का किया हुआ है न? इसलिए भगवान सूत्रकार का यह अभिप्राय है। आहाहा!

श्लोक-१९१

[अब इस १२०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज चार श्लोक कहते हैं:]

(हरिणी)

वचनरचनां त्यक्त्वा भव्यः शुभाशुभलक्षणां,
सहजपरमात्मानं नित्यं सुभावयति स्फुटम्।
परम-यमिनस्तस्य ज्ञानात्मनो नियमादयं,
भवति नियमः शुद्धो मुक्त्यङ्गनासुखकारणम्।।१९१।।

(वीरछन्द)

शुभ अरु अशुभ वचन रचना का त्याग करें जो भव्य महान।
सम्यक् तथा प्रगट भाते हैं सहज तत्त्व परमात्म महान॥

उन ज्ञानात्मक परम यमी को मुक्ति-वधू सुख कारण जो।
ऐसा शुद्ध नियम होता है उन्हें नियम से शीघ्र अहो॥१९१॥

[श्लोकार्थः] जो भव्य शुभाशुभस्वरूप वचनरचना को छोड़कर सदा स्फुटरूप से सहजपरमात्मा को सम्यक् प्रकार से भाता है, उस ज्ञानात्मक परम यमी को मुक्तिरूपी स्त्री के सुख का कारण ऐसा यह शुद्धनियम नियम से (-अवश्य) है॥१९१॥

श्लोक- १९१ पर प्रवचन

[अब इस १२०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज चार श्लोक कहते हैं:]

वचनरचनां त्यक्त्वा भव्यः शुभाशुभलक्षणां,
सहजपरमात्मानं नित्यं सुभावयति स्फुटम्।
परम-यमिनस्तस्य ज्ञानात्मनो नियमादयं,
भवति नियमः शुद्धो मुक्त्यङ्गनासुखकारणम्॥१९१॥

श्लोकार्थः आहाहा! **जो भव्य...** आहाहा! **शुभाशुभस्वरूप वचनरचना को छोड़कर...** यह शुभ और अशुभ दोनों को छोड़कर। आहाहा! और **सदा स्फुटरूप से...** सदा प्रगटरूप से **सहजपरमात्मा को सम्यक् प्रकार से भाता है,...** प्रगटरूप से। शक्तिरूप से स्वभाव तो है। भगवान परमात्मा का स्वरूप स्वयं आत्मा शक्तिस्वरूप तो है। आहाहा! परन्तु **सदा स्फुटरूप से...** आहाहा! सदा निरन्तर उसे प्रगटरूप से। आहाहा! **सहजपरमात्मा को सम्यक् प्रकार से भाता है,...** आहाहा! मन-वचन-काया की क्रिया निकाल डाली और उसकी ओर के झुकाववाला राग होता है, उसे निकाल डाला। आहाहा! यह लिखते समय का राग है, यह दोनों इन्होंने निकाल दिये। आहाहा! यह राग मेरा नहीं, मैं उसमें नहीं। आहाहा! मुझे तो यह भगवान का आनन्द झरता वह मैं हूँ और वही नियम है और उस नियम को भगवान सूत्रकार इस नियम को कहना चाहते हैं। नियमसार। नियमसार में नियम ऐसा कहना चाहते हैं। आहाहा!

जो भव्य शुभाशुभस्वरूप वचनरचना को छोड़कर... आहाहा! शुभ वचन को

छोड़कर, भगवान की वाणी और यह सब... आहाहा! इस सब शुभवचन को छोड़कर। आहाहा! भगवान की वाणी भी फिराना और पर्यटन करना... आहाहा! वह सब शुभराग है।

मुमुक्षु : शास्त्र का स्वाध्याय करना, वह भी राग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह राग है। परद्रव्य में लक्ष्य जाए, वह सब राग है। लिखने में, अक्षरों में, बोलने में, वह सब राग है। आहाहा! उस राग से निवर्त कर... आहाहा! **भव्य शुभाशुभस्वरूप वचनरचना को छोड़कर...** आहाहा! स्वाध्याय की वचनारचना, वह भी शुभभाव की है। अन्दर शुभभाव है। आहाहा! उसे छोड़कर... आहाहा! **सदा स्फुटरूप से...** प्रगटरूप से। शक्तिरूप से पड़ा है, वह भले हो परन्तु उससे प्रगटरूप से पर्याय में... आहाहा! आनन्द का सागर भगवान उसे प्रगटरूप से... आहाहा! सदा प्रगटरूप से **सहजपरमात्मा को...** स्वाभाविक जो परमात्मा स्वयं प्रभु है। आहाहा! यह सब गुजराती है। गुजराती समझ में आता है? बहिनों को समझ में आता है? आहाहा!

जो भव्य... अभव्य नहीं लिये। उन्हें नहीं हो सकता। **शुभाशुभस्वरूप वचनरचना को छोड़कर सदा स्फुटरूप से सहजपरमात्मा को...** स्वाभाविक परमात्मा अरूपी और शरीरप्रमाण और रूपी नहीं, इसलिए तुझे हाथ नहीं आता। उसमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं और कद शरीरप्रमाण है। परन्तु अनन्त गुण का दल है, अनन्त गुण का पिण्ड है, सहजपरमात्मा है। आहाहा! वह स्वाभाविक परमात्मा है। स्वाभाविक परमात्मा ही है। आहाहा! सहजपरमात्मा है। स्वाभाविक परमात्मा है। परमात्मा होगा और... आहाहा! भगवान अन्दर सहजपरमात्मा है, उसे **सम्यक् प्रकार से भाता है,...** शुभाशुभ को छोड़कर... आहाहा! सदा स्फुटरूप से सहज परमात्मा को सम्यक् प्रकार से भाता है। आहाहा! अनुभव में उसे भाता है। आहाहा! वीतरागभाव से आत्मा को भाता है। आहाहा! राग का कण जिसके सम्बन्ध में नहीं, राग की अपेक्षा जिसमें नहीं, उसे छोड़कर, ऐसा यहाँ तो कहा है। शुभराग व्यवहाररत्नत्रय, कथनमात्र जो शुभराग है, उसे भी छोड़कर। आहाहा!

उस ज्ञानात्मक परम यमी को... जो इस प्रकार सदा स्फुटरूप से सहजपरमात्मा को सम्यक् प्रकार से सच्ची रीति से भाता है। आहाहा! कल्पना हो जाए कि यह मुझे समझ में आता है, वह नहीं। सच्ची रीति से भाता है, कहते हैं। आहाहा! **सम्यक् प्रकार से भाता है, उस ज्ञानात्मक परम यमी को...** वह जीव ज्ञानात्मक परम यमी। आहाहा! यम अर्थात्

व्रत, निश्चय। वह परमसंयमी। आहाहा! **यमी को मुक्तिरूपी स्त्री के सुख का कारण...** मुक्तिरूपी स्त्री के सुख का कारण। **ऐसा यह शुद्ध नियम...** आहाहा! **ऐसा यह शुद्ध नियम, नियम से (-अवश्य) है।** ऐसा यह शुद्ध नियम, नियम से है। आहाहा! अकेला अमृत बरसाया है। लोगों ने सुना न हो व्यवहार में... व्यवहार में ऐसे बाहर दिखायी दे। अपवास करे, यह ले, बोले, यह सब बाहर में दिखायी दे और दिखाव में से माने कि यह ठीक है। आहाहा! उस दिखाव की क्रिया में से अन्तर का अनुमान हो सके, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह तो अन्तर की दशा की रागरहित... आहाहा! ज्ञानस्वरूप परम यमी।

मुनि कहते हैं कि मुनि कैसा होता है? ज्ञानस्वरूप मुनि है। आहाहा! वह **मुक्तिरूपी स्त्री के सुख का कारण ऐसा यह शुद्ध नियम, नियम से (-अवश्य) है।** आहाहा! ऐसा नियम वह अवश्य नियम है। बाकी आत्मा के अनुभव और दृष्टि बिना जो कुछ नियम लेकर बैठे, वे सब नियम मिथ्या है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आत्मा के ज्ञान बिना, आत्मा के आनन्द के अनुभव बिना जो व्रत, तप, क्रिया लेकर बैठे, वह सब शून्य खोटे हैं। आहाहा! सम्प्रदाय के आग्रह से बैठा हो, उसे यह बात कठिन पड़ती है। मार्ग तो यह है, प्रभु! यह तो भगवान सूत्रकार यह पुकारते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य, भगवान के पास गये थे। आहाहा! मुनिराज भगवान सूत्रकार का आधार देते हैं और सूत्रकार भगवान के पास गये थे। आहाहा! उन्होंने यह नियमसार बनाया है और वह भी स्वयं कहते हैं कि मैंने तो मेरे लिये बनाया है। आहाहा! यह नियम दूसरे में समयसार, पंचास्तिकाय (बनाये) परन्तु यह तो मेरे लिये बनाया है। आहाहा! १९१ (कलश पूरा) हुआ।

श्लोक-१९२

(मालिनी)

अनवरतमखण्डाद्वैतचिन्निर्विकारे,
निखिलनयविलासो न स्फुरत्येव किञ्चित्।
अपगत इह यस्मिन् भेदवादस्समस्तः,
तमहमभिनमामि स्तौमि सम्भावयामि।।१९२।।

(वीरछन्द)

निर्विकार अद्वैत निरन्तर जो अखण्ड चैतन्य स्वरूप।
जिसमें किञ्चत् प्रगट न होते हैं समस्त नय भेद समूह॥
भेदवाद सब दूर हुए जिससे मैं वह परमात्म स्वरूप।
नमन करूँ स्तवन करूँ सम्यक् प्रकार से भाता हूँ॥१९२॥

[श्लोकार्थः] जो अनवरतरूप से (-निरन्तर) अखण्ड अद्वैत चैतन्य के कारण निर्विकार है, उसमें (-उस परमात्मपदार्थ में) समस्त नयविलास किंचित् स्फुरित ही नहीं होता। जिसमें से समस्त भेदवाद (-नयादि विकल्प) दूर हुए हैं, उसे (-उस परमात्मपदार्थ को) मैं नमन करता हूँ, उसका स्तवन करता हूँ, सम्यक् प्रकार से भाता हूँ॥१९२॥

श्लोक- १९२ पर प्रवचन

---

१९२ (श्लोक)

रतमखण्डाद्वैतचिन्निर्विकारे,
निखिलनयविलासो न स्फुरत्येव किञ्चित्।
अपगत इह यस्मिन् भेदवादस्समस्तः,
तमहमभिनमामि स्तौमि सम्भावयामि।।१९२।।

श्लोकार्थ : जो परमात्मपदार्थ में **अनवरतरूप से (-निरन्तर) अखण्ड...** आहाहा! **(-निरन्तर) अखण्ड अद्वैत चैतन्य के कारण निर्विकार है...** प्रभु तो अन्दर निर्विकार है। आहाहा! पुण्य के विकल्प का विकार भी जिसमें नहीं है। **जो अनवरतरूप से (-निरन्तर) अखण्ड अद्वैत चैतन्य के कारण...** ऐसे उसके स्वरूप के कारण, ऐसा कहते हैं। जो **अखण्ड अद्वैत चैतन्य के कारण निर्विकार है...** निर्विकार क्यों है ?—कि निरन्तर चैतन्यपना उसमें है, इससे वह निर्विकार है। आहाहा! **उसमें (-उस परमात्मपदार्थ में) समस्त नयविलास किंचित् स्फुरित ही नहीं होता।** आहाहा! यह ऐसा और वैसा है, ऐसा उसमें है ही नहीं, कहते हैं। **नयविलास किंचित् स्फुरित ही नहीं होता।** आहाहा! यहाँ तो विकल्पवाले-भेदवाले निश्चय और व्यवहारनय दोनों निकाल दिये। आहाहा! **समस्त नयविलास किंचित् स्फुरित ही नहीं होता।** भगवान चैतन्यस्वरूप विराजमान है। आहाहा!

अखण्ड अद्वैत चैतन्य के कारण निर्विकार... होने से विकारवाला नय उसमें है नहीं। उस चैतन्य के कारण निर्विकार है, इसलिए जो विकारनय है, वह उसमें नहीं है। आहाहा! **जिसमें से समस्त भेदवाद (-नयादि विकल्प) दूर हुए हैं...** भेद अर्थात् नयादि विकल्प। गुण-गुणी का भेद और द्रव्यपर्याय का भेद वह **(-नयादि विकल्प) दूर हुए हैं, उसे (-उस परमात्मपदार्थ को)...** आहाहा! **मैं नमन करता हूँ,...** उस चीज़ को मैं नमन करता हूँ। आहाहा! उसे **स्तवन करता हूँ,...** उसका स्तवन करता हूँ और उसे **सम्यक् प्रकार से भाता हूँ।** इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय मोक्ष के लिये नहीं है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)